कड़वा सच ◆ ग्रामीण इलाकों में बैंकों से कर्ज लेने में गरीबों को रिश्वत देनी पड़ती है

माइक्रोफाइनेंस का विकल्प ढूंढ़ना मुश्किल

देश में माइक्रोफाइनेंस संस्थानों की भूमिका और उनकी गतिविधियां पिछले कुछ दिनों से भारी विवाद के घेरे में हैं। छोटे कर्ज देने वाले इन संस्थाओं की बेहद ऊंची ब्याज दरें और कर्ज वसूलने के लिए जोर-जबरदस्ती के अलावा शीर्ष प्रबंधकों को मिलने वाला मोटे वेतन पर लगातार चिंता जताई जा रही हैं। माइक्रोफाइनेंस संस्थाओं के कामकाज पर लोग अब सवाल उठा रहे हैं और दिन-दुनी, रात चौगुनी होने वाली भारी कमाई को देखते हुए नियमन की मांग कर रहे हैं। हालांकि इनके बारे में किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले हालात का तटस्थ विश्लेषण भी जरूरी है।

लेखक एनसीएईआर में सेंटर फॉर मैक्रो कंज्यूमर रिसर्च के डायरेक्टर हैं।

राजेश शुक्ला

हाल के वर्षों में देश के ग्रामीण इलाकों में रहने वाले गरीबों को वित्तीय साधन मुहैया कराने के लिए कई नए तरीके सामने आए हैं। इनमें सबसे प्रमुख है स्वयंसेवा समूह (सेल्फ हेल्प ग्रुप) और बैंकों का गठजोड़। इस मॉडल को नेशनल बैंक फॉर एग्रीकल्चरल एंड रूरल डेवलपमेंट यानि नाबार्ड की मदद मिलती है। गैर सरकारी संगठनों, सरकारों और बैंक का एक गठजोड़ भी छोटे कर्ज मुहैया कराता है। इनके अलावा स्वतंत्र और विशेषज्ञ माइक्रोफाइनेंस संस्थाएं भी सीधे कर्ज मुहैया करती हैं। मुख्यधारा की जिन वित्तीय संस्थानों से गरीबों को कर्ज नहीं मिलता उन्हें कर्ज देकर माइक्रोफाइनेंस संस्थाएं वित्तीय समावेश के एजेंडे को आगे बढ़ाने का दावा करती हैं। उपभोग को सहज बनाने में माइक्रोफाइनेंस संस्थाओं ने जो भूमिका निभाई है, उसे नजरअंदाज करना मुश्किल है। इन कर्जों के जरिये बड़ी तादाद में गरीबों ने उत्पादक परिसंपत्तियों का निर्माण कर अपनी आर्थिक हैसियत सुधारी है। सिर्फ कर्ज दे देने से ग्रामीणों की आर्थिक हैसियत अच्छी होना मुश्किल है। इन कर्जों के जरिये आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े लोगों की स्थिति तभी सुधर सकती है, जब उनके कौशल विकास, तकनीकी और मार्केटिंग प्रशिक्षण का ध्यान रखा जाए।

दिसंबर, 2010 में एनसीएईआर के सेंटर फॉर मैक्रो कंज्यूमर रिसर्च ने छोटे कर्जों का असर जानने के लिए कलस्टर आधारित सर्वे किया। ये सर्वे, हैदराबाद, चेन्नई, कोलकाता, जयपुर और लखनऊ में किए गए। हर जगह से दो-दो हजार सैंपल लिये गए। (इनमें 70 फीसदी ग्रामीण और 30 फीसदी शहरी सैंपल थे)। शुरुआती नतीजों से पता चला कि में मांगे गए कर्ज काफी छोटे थे। एक तरह से पारंपरिक स्त्रोतों से मांगे गए कर्ज की तुलना में चौथाई। अगर मांगे गए कर्ज की राशि और मंजूर होने वाली राशि या मंजूर की गई राशि और वास्तव में हासिल की गई राशि के अंतर का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि माइक्रोफाइनेंस संस्थाओं का रिकार्ड पारंपरिक वित्तीय संस्थाओं से काफी अच्छा है। कॉमर्शियल बैंक जो लोन देते हैं, उनकी प्रोसेसिंग की गति माइक्रोफाइनेंस संस्थाओं की तुलना में बेहद धीमी होती है। सैंपल में जिन लोगों से सवाल किए गए, उनके मुताबिक कॉमर्शियल बैंकों की ब्याज दरें माइक्रोफाइनेंस संस्थाओं की ब्याज दरों से कम थीं। लेकिन कॉमर्शियल बैंकों के कर्ज में गैर आधिकारिक चार्जेज भी जुड़े थे। साफ था कि वाणिज्यिक बैंकों से लिये गए कर्ज के लिए रिश्वत देनी पड़ रही थी। रिश्वत की यह राशि उधारी लागत में जुड़ जाती है। माइक्रोफाइनेंस संस्थाओं में यह छह फीसदी थी जबकि वाणिज्यिक बैंकों में 33 फीसदी।

सुविधाजनक हालात पैदा करके वित्तीय प्रणाली का विकास जरूरी है लेकिन आर्थिक विकास के लिए इतना पर्याप्त नहीं है। वित्तीय संसाधनों से दूरी समाज के एक बड़े वर्ग को औपचारिक संस्थानों से काट देती है। और यह लागत समाज को उठानी पड़ती है। वर्ष 2006 में वर्ल्ड बैंक के लिए किए

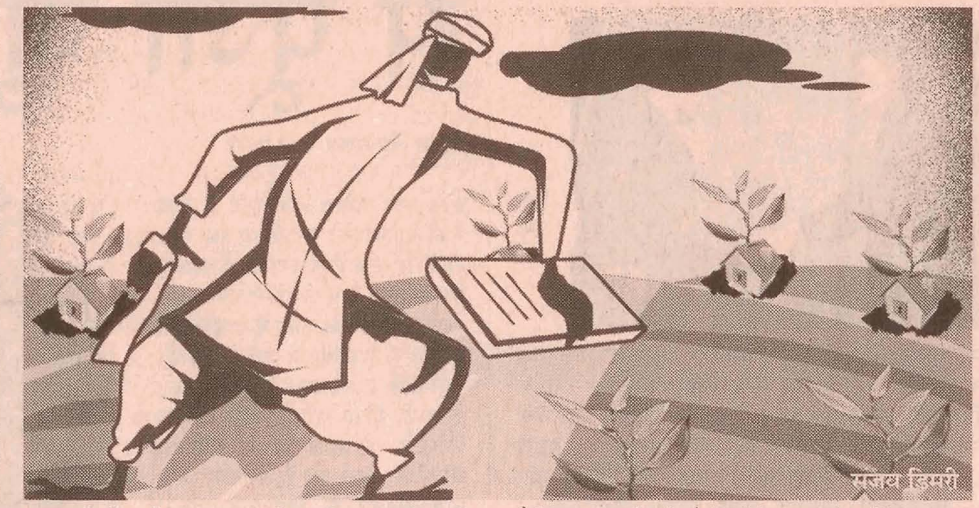

गए एनसीएईआर के एक अध्ययन के मुताबिक भारत के ग्रामीण इलाकों में बड़ी आबादी के पास औपचारिक वित्तीय संसाधनों तक पहुंच नहीं हैं।

ग्रामीण बैंक ज्यादातर अमीरों को ही कर्ज देते हैं। सर्वे के दौरान पता चला कि बेहद गरीब 87 फीसदी ग्रामीण परिवारों के पास ऋण हासिल करने का कोई जरिया नहीं था। लगभग 44 फीसदी ग्रामीण आबादी ने पिछले एक साल के दौरान कभी न कभी सूदखोरों और दुकानदारों से कर्ज लिया था। ऐसे ऋणों पर 48 फीसदी ब्याज लिया गया।

बैंकों के लिए ग्रामीण इलाकों में गरीबों को कर्ज या वित्तीय सहायता देना जोखिम भरा और महंगा रहा है। गरीब आबादी की भुगतान करने की अनिश्चितता की वजह से भी वे वित्तीय सहायता से दूर रहे हैं। कर्ज लेने वालों के पास गारंटी का अभाव भी एक बड़ी वजह रही है। ग्रामीण भारत में बैंकों की लेनदेन (ट्रांजेक्शन) की लागतें भी काफी ज़्यादा हैं। बड़े भौगोलिक इलाके में फैले होने, कर्ज के छोटे आकार, ट्रांजेक्शन की तेज बारंबारता और बड़े पैमाने पर फैली निरक्षरता की वजह से पारंपरिक बैंकों के कर्ज प्रवाह से गरीब दूर रहे हैं। बैंकों के पास ऐसी योजनाएं नहीं हैं जो गरीबों की आय और उनके खर्चों के पैटर्न से मेल खाती हों। पारंपरिक बैंकों की ट्रांजेक्शन लागतें ज्यादा हैं और लोन के लिए आवेदन करने से लेकर इसे हासिल करने में काफी समय लग जाता है। लोन हासिल करने के लिए खाता खोलने की प्रक्रिया भी काफी जटिल है और खर्चीला है। कर्ज लेने के लिए बैंकों को रिश्वत खिलानी पड़ती है। इस तरह कर्ज लेना काफी महंगा पड़ता है। बैंक गारंटी की मांग करते हैं, लेकिन कर्ज मांगने वाली ग्रामीण आबादी के पास यह कहां होता है। भारत जैसे में बड़े और विविधता भरे देश में ग्रामीण इलाके के गरीबों तक प्रतिस्पर्द्धी कीमतों पर वित्तीय संसाधनों की पहुंच बनाना एक बड़ी चुनौती है।